26) इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में वृद्ध जीवन
प्रा. अनिल बाबुलाल सूर्यवंशी || 90

27) प्रथम दशक की हिन्दी दलित कहानियाँ
डॉ. सुनीता एन. कावले || 93

28) इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में नारी विमर्श की अवधारणा
प्रा. डॉ. मुकेश दामोदर गायकवाड मुकेशराजे || 96

29) `नया ज्ञानोदय` में प्रकाशित कहानियों में चित्रित समस्याएँ
डॉ. राजेश भामरे, || 99

30) ए. बी. सी. डी. उपन्यास में व्यक्त नारी विमर्श
प्रा. डॉ. पूनम त्रिवेदी || 10

31) ``इक्कीसवीं सदी का हिन्दी कथा साहित्य: `अंधेरे का ताला`में व्यक्त संवेदना``
प्रा.डॉ. पिरू आर. गवली || 1(

32) उषा महाजन की कहानियों में चित्रित संघर्षशील नारी
प्रा. डॉ. योगेश गोकुळ पाटील || 1(

33) आदिवासी उपन्यासों में स्त्री विमर्श
प्रा. डॉ. जयश्री गावित || 1

34) नरक मसीहा की एक कड़वी सचाई
डॉ. जगदीश बन्सीलाल चव्हाण ||

35) "ममता कालिया का उपन्यास 'दुक्खम सुक्खम' में चित्रित नारी पीड़ा"
डॉ. विजयप्रकाश ओमप्रकाश शर्मा ||

36) समकालीन उपन्यास कहानी कोई सुनाओं मिताशा पर चिंतन
प्रा. भाईदास रघुनाथ पाटील ||

37) २१ वीं शती के उपन्यासों में नारी विमर्श
प्रा. डॉ. अनिता नेरे भामरे ||

http://www.vidyawarta.blogspot.com
Scanned with CamScanner

डेकर बस में बैठी।

"दूर रहकर न करो बात करीब आजाओ" गीत के हल्के — हल्के सूर मेरे होश उडा रहे थे "। सचमूच मिताशा के जीवन को —समझते समझते इस वाक्य को पढकर ऐसा महसूस होता है मानो हम किसी फिल्म की कहानी या फिल्म देख रहे है।

इसी प्रकार पात्रानुकुल भाषाशैली का उपयोग, देशकाल वातावरण, तत्कालीन समाज चित्रण, व्यक्ति वर्णन और विषय वस्तु आदि का कलात्मक ढंग से समन्वय यहाँ दिखाई देता है। इसीलिए पाठक इस उपन्यास को पढने आरंभ करता तो जिज्ञासा वश उसे अंत तक मन लगाकर पढे बगैर नही रहता और इसीलिए मेरी नजरों से सह उपन्यास भारतीय समकालीन उपन्यासों में सशक्त उपन्यास साबित होता है,या इस कसौटी पर पुरी तरह से खरा उतरता है।

❑❑❑

37

२१ वीं शती के उपन्यासों में नारी विमर्श

प्रा. डॉ. अनिता नेरे भामरे)
म.स.गा.महाविद्यालय, मालेगांव कैम्प

स्त्री पक्षधरता में भारतीय नवजागरण काल से ही हिंदी साहित्य में पर्याप्त साहित्य रचना हुई है । स्वतंत्रता आंदोलन में भी नारी जागृति पर बल रहा । उस समय महिला और पुरुष साहित्यकारों में उत्साह से नारी पक्ष के लेखन में अपना योगदान दिया । हिंदी साहित्य में भी नारी दशा सुधार के अनेक प्रयास हुए, जिनमें मित्रो मरजानी, चित्तकोबरा, मुझे चाँद चाहिए जैसे उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंध और नारी विमर्श को लेकर नये सिरे से लेखन किया गया है । इन हिंदी उपन्यासों स्त्री-पुरुष में संबंधों को एक प्रकार से अपने ढ़ग से पुनर्परिभाषित किया हुआ दिखाई देता है ।

इक्कीसवीं शती तक आते-आते हिंदी में महिला साहित्यकारों द्वारा स्त्री विमर्श संबंधी बहुत सारी पुस्तके प्रकाशित करायी है, जिनमें दस द्वारे का पिंजरा, तिनका तिनका पास (अनामिका), शेष कादम्बरी, एक ब्रेक के बाद (अलका सरावगी), भया कबीर उदास (उषा प्रियंवदा), समय सरगम (कृष्णा सोबती), खाली जगह (गीतांजली श्री), कथा सतीसर (चंद्रकांता), गिलिगुडु (चित्रा मुदगल), खानाबदोश ख्वाहिशे (जयंती), सेज पे संस्कृत (मधु कांकरिया), दुक्खम-सुक्खम (ममता कालिया), मिल जुल मन (मृदुला गर्ग), कस्तूरी कुंडल से, त्रिया हठ (मैत्रेयी पुष्पा), एक न एक दिन (रजनी गुप्त), सही नाप के जूते (लता शर्मा), यहीं कहीं था घर (सुधा अरोड़ा) आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं । इन रचनाओं को पढ़ने के बाद लगता है कि २१ वी शतीं की महिला कथाकार एक पूरी वैचारिक पृष्ठभुमि के साथ उपन्यास लेखन में प्रवृत्त हुई है । इन्होंने विवाह संस्था को पुनर्परिभाषित करने के साथ-साथ स्त्री-पुरूष संबंधों को भी नई दृष्टि से विश्लेषित किया है । सन् २००१ में प्रकाशित 'शेष कादम्बरी' में अलका सरावगी ने सविता और रूबी दी के मध्य वार्तालाप में उस नारी की वेदना को अंकित किया है, जो विवाह सूत्र में बँधकर पति के प्रत्येक अनुचित को सहने के लिए अभिक्षप्त है । किंतु उपन्यास के अंत में लेखिका ने सविता को इतनी दबंग दिखाया है कि वह अपने छली पति को सबक

Scanned with CamScanner

सिखा देना चाहती है, कोर्ट में घसीटकर उससे बीस लाख रूपए वसूलना चाहती है । वह अपने अत्याचारी पति को क्षमा नहीं करती । 'एक ब्रेक के बाद' में अलकाजी दाम्पत्येतर प्रेम की पैरवी करती नजर आती है । यहाँ स्त्री 'अपना एक निजी स्पेस' बनाने कि लिए तत्पर है । एक प्रकार से यहाँ विवाह संस्था को पूरी तरह नकार दिया गया है ।

अनामिका के 'तिनका-तिनका पास' में स्त्री विमर्श उत्तर आधुनिक रूप लेकर उपस्थित हुआ है । इसमें विवाह संस्था, प्रेम, दाम्पत्येतर प्रेम संबंध, स्वच्छन्द प्रेम, कॉलगर्ल पेशा आदि को विवेचित किया है । अनामिका ने इस उपन्यास में नारी को पूरी शक्ति से स्थितियों का प्रतिकार करते हुए दिखाया है । लेखिका रजनी गुप्त ने भी 'एक न एक दिन' उपन्यास में विवाह संस्था के परंपरागत रूप की यंत्रणाओं को उजागर करती हुई, सारी स्थितियों का प्रतिरोध नायिका कृति के माध्यम से प्रस्तुत किया है । पति नामक पुरूष अपने लिए तो 'ब्रीदिंग स्पेस' चाहता है किंतु स्त्रियों के लिए हर जगह बात-बात पर हदबंदियाँ लागू कर देना चाहता है । इसका मुख्य कारण आर्थिक परवशता है । कृति जैसी उच्च अफसर को भी घर में दाम्त्य का वही पुराना नरक भोगना पड़ता है । विवाह सूत्र में बंधकर स्त्री क्रीत दासी क्यों बन जाती है । "आखिर किसने थमाए एक व्यक्ति के हाथों में इतने अनंत अधिकार ? क्यों ये व्यवस्था हमेशा औरत पर ही छींटाकशी के मौके ढूँढते रहती है ? महज सात फेरे लेने से क्यूँकर एक पुरूष किसी भी स्त्री का सर्वांग मालिक बन जएगा ? स्त्री की सारी सोच, सारी क्षमताएँ, और सारी उर्जा क्यूँकर एक पुरूष के इर्द-गिर्द चक्कर काटकर वही थम जाने के लिए अभिशप्त है ?" ऐसे कई सवाल उठाये हैं ।

ममता कालिया ने 'दुक्खम-सुक्खम' उपन्यास में पारंपारिक सामाजिक परिवेश में स्त्री-दुर्गति के जाने-पहचाने सत्यों से साक्षात्कार कर स्त्री सशक्तिकरण के लिए पूरी मानसिकता विकसित की है । यदयपि कथा के केंद्र में मथुरा हैं, कहीं कहीं वृंदावन भी किंतु यह कथा केवल इस व्रज क्षेत्र की क्यो न रहकर पूरे उत्तर भारत की रचाई संस्कृति को पुनर्जीवित करती है । समस्त आधुनिकता के बावजूद स्त्री की भारतीय परिवार व्यवस्था में जो दुर्गति है, उसे लेखिका ने विभिन्न स्त्री पात्रों के जीवन से अभिव्यक्ति दी है । उपन्यास में इन्दु की स्थिती किसी भी भारतीय नारी की नियती है । इन्दु की अगली पीढ़ी, उसकी बेटी समस्त आधुनिकता को अपनाकर मॉडलिंग से लेकर फिल्मी दुनिया तक भागदौड़ करती है किंतु शांति उसे कहीं नही मिल पाती । विद्यावती गांधी बाबा से पूछना चाहती है कि उन्होंने स्त्री स्वातंत्र्य के लिए कुछ नहीं किया । "मोय नाय मिलौ गांधी बाबा नहीं में बासो पूछती ज्यो जी तुमने सिर्फ आदमियों को आजादी दिला दी, का मुख्य स्वर यहीं रहा है कि स्त्री का संपूर्ण जीवन ही समझौता बनकर रह जाता है । उपन्यास में नारीवाद के नए नारों से सर्वथा असंपृक्त रहकर स्त्री पक्ष में खड़ा किया गया है । उपन्यास का प्रारंभ ही हमारे समाज के उस कड़वे सच से सामना करता है जिसमें कन्या का जन्म एक अभिशाप माना जाता रहा है । लड़की के जन्म पर मायूसी का आलम छा जाता है । "जिस दिन वह पैदा हूई, घर में कोई उत्सव नहीं मना, लड्डू नहीं बँटे, बधावा नहीं बजा । उलटे घर की मनहूसियत ही बढ़ी । दादी ने चूल्हा तक नहीं जलाया । लालटेन की मध्यम रोशनी में सिर पर हाथ रखे देर तक बैठी रही । बेटे की बेटी के लिए उनके मन में अस्वीकार का भाव था ।" लेखिका ने यहाँ सवाल उठाया है कि लड़की के जन्म पर यह मायूसी का आलम क्यों होता है ? यह सामाजिक परिस्थितियाँ आज भी नहीं बदली है । विद्यावति के पति नत्थीमल पत्नी के गर्भ रह जाने पर अबकी बार लड़की न हो जाए, इस भय से गर्भ की सफाई की गोलियाँ देते हैं ।

मधु काँकरिया ने 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में जैन समाज में धर्म के नाम पर स्त्री पर हो रहे अत्याचोरों का पर्दाफाश किया है । धर्म में दिक्षित होकर भी स्त्रियाँ कहाँ सुरक्षित रह पाती है ? इन धार्मिक आश्रमों-डेरों आदि में स्त्री का जो शोषण, अत्याचार होता है, उसका भी अंकन मधु काँकरिया ने बडे सटीक ढ़ंग से किया है । संघामित्रा के माध्यम से लेखिका ने महिला सशक्तिकरण का उदाहरण दर्शाया है । अपने बॉस मि.मुखर्जी की मेज पर अपना त्यागपत्र रखकर संघमित्रा उन्हें वो टुक जबाब देती है और नारी के स्वाभिमान की रक्षा करती है । "खुद कुकुर हुए तो अब पूरी स्त्री जाति का ही कुकरीकरण करने के महान काम में लगे हुए हैं ... आधुनिकता की इस चकाचौंध ने आपको इतना मोटा देखने का अभ्यस्त बना डाला कि नारी स्वाभिमान और सन्मान की ये बारीक हरकतें आप लोगों को दिखलाई नहीं पड़ती । इस प्रकार संघमित्रा विषय परिस्थितियों से डगमगाती नहीं बल्कि भरपूर प्रतिरोध करती है । इसी प्रकार उपन्यास का अन्य पात्र छुटकी भी अपने ऊपर हुए अत्याचारों का विरोध कर धर्मगुरू अभय मुनि को क्षमा नहीं करती । वह उन्हें 'मिटाने' का संकल्प पालती है । लेखिका ने यही दर्शाया है कि समाज द्वारा दी गई यातनाओं, दैहिक अत्याचोरों से स्त्री ना झुकती है न ड़रती है बल्कि वह उनका प्रतिकार करती है । नारी विमर्श के संदर्भ में यह बहुत बड़ी पहल है ।

विजन, बेतवा बहती रही, कस्तूरी कुंडल बसै उपन्यासों में नए युग की नारी की प्रतीति दिलाती मैत्रेयी पुष्पा ने 'त्रिया हठ' में भी औरत में से औरत की असलियत निकालकर उसको विश्लेषित करने की कोशिश की है । उपन्यास में उर्वशी के रूप में एक ऐसी हठीली

Scanned with CamScanner